

आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ॥ कलि ताती ठांढा हरि नाउ ॥

भाग — 2

गुरबाणी अनुसार 'जीव' के लिए दो भिन्न-भिन्न विरोधी विकल्प हैं—

'आतस दुनीआ'

तथा

'खुनक नामु खुदाइआ'

'आतस दुनीआ' अथवा 'अग्नि-शोक-सागर' में, हम मायिकी भ्रम-भुलाव के अंधकार में या 'मिथन-मोह-सागर' में, अनेक जन्मों से जन्म लेते तथा मरते हुए, अनेक जीवन व्यतीत करते आए हैं।

इस 'आतस दुनिया' से हम 'अभ्यस्त' हो चुके हैं, क्योंकि कई जन्मों से इसी 'अग्नि-शोक-सागर' में ही हम —

प्रवृत्त होते

खचित होते

तपते

जलते

सुलगते

सड़ते

कुढ़ते

ख्वार होते

यमों की मार सहते

नरक भोगते

हुए अत्यंत —

दर्दनाक

भयानक

कड़वे

‘निजी तजुरबे’ करते आये हैं। परन्तु इसके अंतरीव गुप्त भेद या वास्तविकता से बिल्कुल —

अनजान

बेवखर

बेपरवाह

लापरवाह

मस्त

बने हुए हैं !

आश्चर्य की बात यह है कि इस ‘आतस दुनीआ’ में —

जलते-भुनते

‘हाय-हाय’ करते

‘दुहाई’ करते

‘रोते-चिल्लाते’

‘तोबा-तोबा’ करते

त्राहि-त्राहि करते

हुए भी, इस गुप्त अग्नि के कारण या भेद को —

समझने

जानने

बूझने

विचार करने

खोज करने

या निर्णय करने का कभी ख्याल ही नहीं आया तथा न आवश्यकता ही महसूस की है !!

यद्यपि अनेक गुरु, अवतार, भक्तों ने इस 'आतस दुनीआ' के विषय में हमें —

समझाने के लिए,
प्रताड़ित करने के लिए, तथा
इससे बचने के लिए

सरल ज्ञान द्वारा सुलभ उपदेश दिए हैं ।

मन मूरख अजहू नह समझत सिख दै हारिओ नीत ॥

(पृ. 536)

बेद बरिखान करत साधू जन भागहीन समझत नही खलु ॥

(पृ. 717)

परन्तु, अपने प्रतिदिन के 'जीवन वेग' (routine) में बहते हुए, हम इतने व्यस्त हो गए हैं, कि इसके भयानक तथा दुखदायी परिणाम के प्रति-

मस्त

ढीठ

कठोर

लापरवाह

बेपरवाह

होकर 'किझु न बुझै किझु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि' वाला जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

अपनी थोथी तथा कूड़ दिमागी सयानप की 'अज्ञानता' में, मैं-मेरी की नन्ही सी स्वयं रचित 'आतस दुनीआ' से बाहर किसी अन्य —

श्रेष्ठ

उत्तम

सुनहरी

सभ्य

शांत

सुखदाई

शीतल

प्रेम स्वैपना वाली

प्रिम रस वाली

रुन-झुन वाली

चाव वाली

उमाह वाली

आनन्द वाली

मस्ती वाली

‘नाम’ वाली

दुनिया के अंतरीव भेद को —

समझने

जानने

विचारने

बूझने

खोजने

ढूंढने

की कभी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती, तथा न ही —

‘खुनक नामु खुदाइआ’

‘ठांढा हरि नाउ’

‘सीतलु थीवै नानका जपंदड़ो हरि नामु’

की सचाई पर हमें ‘दृढ़ विश्वास’ ही आता है।

गुरबाणी की पंक्ति — ‘आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ’
को पढ़ते, सुनते, गाते तथा नाम मात्र सा ज्ञान घोटते हुए सिर हिलाकर,
अपने मन को झूठी सी तसल्ली दे देते हैं तथा श्रोताओं को थोथे
दिमागी ज्ञान द्वारा कथा-वार्ता सुनाते फिरते हैं! जब की हम स्वयं
इसी —

‘आतस दुनीआ’

‘जगत जलंदा’

‘अगन कुंट’

‘मिथन मोह अगन सोक सागर’

में खचित हो कर जल-भुन रहे हैं।

पड़ि पंडितु अवरा समझाए ॥

घर जलते की खबरि न पाए ॥

बिनु सतिगुर सेवे नामु न पड़ि पड़ि थाके सक्ति न आई हे ॥ (पृ. 1046)

त्रिपति न आवी वेदि मथि

अग्नी अंदरि तपति तपाइआ ।

(वा. भा. गु. 1@1)

यदि एक ओर भीषण अग्नि प्रज्ज्वलित कर दें तथा दूसरी ओर बर्फ
जमा कर दें, तो ज्यों-ज्यों अग्नि के समीप जायेंगे त्यों-त्यों ‘ताप’ बढ़ता
जाएगा तथा ‘शीतलता’ घटती जायेगी। इसके विपरीत यदि अग्नि की
ओर पीठ करके ‘बर्फ’ की ओर मुड़ेंगे तो ठंड बढ़ती जाएगी तथा ताप
घटता जायेगा।

यही नियम हमारी मानसिक अवस्था पर ‘हू-ब-हू’ लागू होता है।

ज्यों-ज्यों ‘ठांढा हरि नाउ’ की ओर पीठ करके, भूलकर या
विमुख होकर, ‘आतस-दुनीआ’ की ओर हमारी वृत्ति-सुरति जाती है,
त्यों-त्यों ‘हरि नाउ’ की ‘आत्मिक शीतलता’ घटती जाती है तथा
उसी अनुपात में हम ‘नाम’ की ‘शीतलता’ से वंचित होते जाते हैं।

कुछ समय पश्चात्, हम माया के 'दल-दल' में इतना धँस जाते हैं कि हमें 'ठांढा हरि नाउ' के विषय में —

ध्यान ही नहीं रहता !

ख्याल ही नहीं आता !

निश्चय ही नहीं आता !

श्रद्धा ही नहीं उत्पन्न होती !

आवश्यकता ही नहीं अनुभव होती !!

इस प्रकार बावजूद गुरुबाणी की निम्नलिखित पंक्तियों : —

अग्नि कुटंब सागर संसार ॥

भरम मोह अगिआन अंधार ॥ (पृ. 675)

माइआ अग्नि जलै संसारे ॥

गुरमुखि निवारै सबदि वीचारे ॥ (पृ. 1049)

आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ॥ (पृ. 1291)

गूझी भाहि जलै संसारा भगत न बिआपै माइआ ॥ (पृ. 673)

जैसी अग्नि उदर महि तैसी बाहरि माइआ ॥

माइआ अग्नि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ ॥ (पृ. 921)

को सारी उमर —

पढ़ते-पढ़ाते

सुनते-सुनाते

समझते-समझाते

कथा-वार्ता करते

थोथा-ज्ञान घोटते

गायन करते

हुए भी, इस 'अग्नि-शोक-सागर' से बचने या निकलने का कभी

ख्याल ही नहीं आता! बल्कि अपनी कूड़ सयानप से इस गुप्त 'अगन-कुंट' में और गहरे 'धँसते' जाते हैं !!

अच्छी या बुरी संगत अनुसार ही हमारा —

स्वभाव

सद्य

आदतें

सदाचार

आचरण

अंतःकरण

'भाग्य'

बनते हैं, जिन में कर्म-बद्ध होकर हम अच्छे-बुरे कर्म करते हैं तथा परिणाम भोगते हैं।

जो जैसी संगति मिले सो तैसो फलु खाइ ॥ (पृ. 1369)

हमारा मन इस 'अग्नि-शोक-सागर' की 'गुप्त अग्नि' में जन्म-जन्म से जल-भुन कर 'कठोर' तथा 'अभ्यस्त' हो चुका है। इस प्रकार हमारा 'मनोबल' मर चुका है। इसलिए हम इस 'गुप्त अग्नि' में ही संतुष्ट तथा मस्त हैं, तभी तो इसमें से निकलने का कभी ख्याल ही नहीं आता।

जब कभी यह गुप्त 'मानसिक अग्नि' तीव्र या असह्य हो जाती है, तो इसका दोष 'दूसरों पर' या 'ईश्वर' पर 'थोप' कर अपना मन हल्का कर लेते हैं।

इसके अतिरिक्त कई प्रकार के 'नशे' जैसे —

शराब

अफीम

गांजा

तम्बाकू

‘हीरोइन’

नशे की गोलियों

द्वारा या अनेक अन्य मानसिक ‘वाशनाओं’ द्वारा —

विलास

मनोरंजन

सिनेमा

टी. वी. (T.V.)

रेडियो

मुंह के स्वाद

इन्द्रियों के भोग

गंदे नावल

व्यभिचार

ताश

जुआ

गपशप

चुगली

निंदा

आदि, द्वारा ‘मन को ‘बहलाकर’ तथा ‘भ्रमित करके’, अपनी
आन्तरिक —

चिंता-चिंता

नफरत की आग

बैर-विरोध की दाह

जल्म

कुठन

अशांति

दुख-क्लेश

जिन्दगी के झमेले

ग्रहस्थ के झंझट

घरेलू समस्याओं

आदि को 'भुलाने' की कोशिश करते हैं।

यह सारे 'मनोरंजन', मन की वृत्ति को मानसिक समस्याओं से 'मोड़कर' या 'टालकर', दूसरी ओर लगाने या 'भुलाने' के अस्थायी उपाय हैं, जिससे कुछ समय तक नाममात्र खुशी या तसल्ली तो आ जाती है, परन्तु मन की अन्दरूनी गुप्त ज्वाला नहीं बुझती तथा न ही हृदय में 'शांति' आती है।

अंतरि चिंता नैणी सुखी मूलि न उतरै भुख ॥ (पृ. 319)

इस प्रकार हम स्वयं ही —

'स्वयं' से धोखा करते हैं ।

अत्यंत धन बर्बाद करते हैं।

स्वास्थ्य खराब करते हैं।

ला-इलाज बीमारियां लगा लेते हैं।

बुरी आदतें डाल लेते हैं।

बुरे 'नशों' के आदी हो जाते हैं।

जलते हुए पर तेल डालते हैं।

आचरण खराब कर लेते हैं।

बदनामी करवा लेते हैं।

'बुरे' भाग्य बनाते हैं।

अनमोल जीवन व्यर्थ गंवा देते हैं।

नरक-रूपी जीवन व्यतीत करते हैं।

‘बिगड़ैल रूप’ होकर यम के वश में आते हैं।

इन सभी ‘मनोरंजनों’ की तह में एक विशेष ‘नुक्ता’ है। वह है — **मन की वृत्ति को मोड़कर, दूसरी ओर लगाना।**

उपरोक्त दर्शाये ‘मनोरंजन’ के सभी उपाय —

अस्थायी

कूट

गलत

हानिकारक

दुःखदायी

भयानक परिणाम वाले

‘स्वयं’ से धोखा

हैं। क्योंकि यह सारे उपाय, मन के **वास्तविक ‘रोग’** अर्थात् **‘मानसिक गुप्त अग्नि’** को कम करने या बुझाने की **अपेक्षा**, मन की गुप्त मानसिक ‘ज्वाला’ को ‘तेल’ डालकर और अधिक प्रज्ज्वलित करते हैं!!

‘मरज बढ़ती गई ज्युं-ज्युं दवा की’ ।

इस दशा के विषय में भाई गुरदास जी ने अपनी वारों में यूं दर्शाया है —

आसा मनसा मोहणी तामसु तिसना सांति न आवै ।

बलदी अंदरि तेलु पाइ किउ मनु मूरखु अगि बुझावै ।

(ok Hk xq 15@)

चितवणीआ लख राति दिहु त्रास न तिसना अगनि बुझाए ।

सुइना रुपा अगला माणक मोती अंगि हंडाए ।

पाट पटंबर पैन्हके चोआ चंदन मह महकाए ।
 हाथी घोड़े पारवरे महल बगीचे सुफल फलाए ।
 सुन्दर नारी सेज सुख माइआ मोहि धोहि लपटाए ।
 बलदी अंदरि तेल जिउ आसा मनसा दुखि विहाए ।
 गुर पूरे विणु जमपुरि जाए । (वा. भा. गु. 15@4)

जहाँ 'अग्नि' है — वहाँ 'शीतलता' नहीं रह सकती ।
 जहाँ 'शीतलता' है — वहाँ 'ताप' का अभाव होता है।
 प्रचंड अग्नि की दाह में से 'शीतलता' ढूँढना, हास्य-प्रद मूर्खता है।

परन्तु, आश्चर्य की बात है, कि हम बहुत बुद्धिमान, विद्वान तथा 'अकल-मंद' कहलाते हुए भी —

'मिथन मोह अगन सोक सागर'
 'आतस दुनीआ'
 'जगत जलंदा'
 'अगन कुंट'

में से 'शीतलता' ढूँढने के प्रयास में गलतान हैं, तथा एक दूसरे से आगे बढ़ने की दौड़ लगा रहे हैं।

इस प्रकार हम अज्ञानता के भ्रम-भुलाव में —

विलास

मनोरंजन

वाशनाएं

काम-क्रोध

लोभ-लहर

इन्द्रियों के भोग

वैर-विरोध

ईर्ष्या-द्वेष

सयानप

चत्सुर्आई

फोकट ज्ञान

‘नशों’

की ‘पूर्ति’ में ही, मन की सुख-शांति तथा शीतलता ढूँढते हैं।

चाहे इन थोथे तथा गलत साधनों से हमें मानसिक खुशी, रस तथा ‘नशा’ सा प्रतीत होता है, जो क्षणभंगुर होता है तथा शीघ्र ही उतर जाता है। फिर नशेड़ी की ‘टोट’ की भांति हमारी मानसिक हालत पहले से अधिक बुरी तथा दुखदायी हो जाती है।

इस प्रकार क्षणभंगुर विलास तथा वाशनाओं की ‘पूर्ति’ — हमारी आन्तरिक सुलगती गुप्त ‘अग्नि’ को सुलगा कर, जला कर, भभका कर, प्रचंड ‘ज्वाला’ बनाने के लिए लकड़ी, तेल तथा पेट्रोल का कार्य करती है। जिसकी खतरनाक ‘लपटों’ से हम और अधिक सड़ते-जलते हैं तथा दूसरों को भी अपनी चिंगारी तथा लपट लगा कर ‘भड़काए’ जाते हैं!!

इस प्रकार हमारे जीवन की ‘भट्ठी’ का अटूट ‘चक्र’, दाने भूनने की ‘भट्ठी’ की भांति घूमता रहता है तथा हर ज्वलन के पश्चात् हम — सुखी, शांत तथा ठंडे होने की अपेक्षा और अधिक —

काले

कुरूप

ढीठ

कठोर

मनमूख

दुखी

होते जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, मानसिक तथा आत्मिक 'शीतलता' के लिए हम धार्मिक स्थानों की ओर दौड़ते हैं, परन्तु वहाँ भी हम अपनी आन्तरिक गुप्त मानसिक 'अग्नि' साथ ले जाते हैं।

जिस कारण धर्म स्थानों में भी —

ईर्ष्या

द्वेष

द्वैत भाव

अहम्

कै

विरोध

रोष

शिकवे

लोभ

मैं-मेरी

की 'मानसिक अग्नि' की ही 'प्रधानता' तथा व्यवहार है।

हमारी इस अवस्था को गुरबाणी में यूँ दर्शाया गया है—

अंतरि अगनि बाहरि तनु सुआह ॥

गलि पाथर कैसे तरे अथाह ॥ (पृ. 267)

अगनि कुटंब सागर संसार ॥

भरम मोह अगिआन अंधार ॥ (पृ. 675)

काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही ॥

कोइले पाप पड़े तिसु ऊपरि मनु जलिआ सन्ही चिंत भई ॥ (पृ. 990)

अंतरि अगनि जलै भइकारे ॥

मनमुखु तके कुंडा चारे ॥ (पृ. 1022)

पापी का घर अग्ने माहि ॥

जलत रहै मिटवै कब नाहि ॥ (पृ. 1165)

मनमुख बोले अंधुले तिसु महि अग्नी का वासु ॥ (पृ. 1415)

लख चउरासीह मेदनी तिसना जलती करे पुकार ॥

इहु मोहु माइआ सभु पसरिआ नालि चलै न अंती वार ॥

बिनु हरि सांति न आवई किसु आगै करी पुकार ॥

(पृ. 1416)

माइआ मोही मेदनी कलि कलि वाली सभि भरमाई ।

उठी गिलानि जगत विचि हउमै अंदरि जलै लुकाई ।

(वा. भा. गु. 1@7)

माइआ डर डरपत हारि गुर दुआरे जावै।

तहां जउ माइआ बिआपै कहां ठहराईऐ । (क. भा. गु. 544)

‘अग्नि’ तथा ‘शीतलता’ — दो विपरीत, विरोधी तथा उल्ट वस्तुएं

हैं।

त्रि-गुण मायिकी मंडल में, ‘मानसिक अग्नि’ की लपटें ‘जल’ रही हैं। तभी इसे —

‘आतिस दुनिआ’

‘अग्नि कुंट’

‘जगत जलंदा’

‘अग्नि शोक सागर’

कहा गया है।

जीवन के हर क्षेत्र —

दिल

मन

दिमाग

शरीर
सयानप
ज्ञान
गरीबी
अमीरी
भोग-विलास
प्यार
जम
तम
पाठ
पूजा
हठ
योग
सेवा
करम
धर्म
हास्य
रुदन
कामनाएं
रोष
शिकवे
दान
पुण्य
दीन
दुनिया

में, हम ने स्वयं इस 'मानसिक गुप्त अग्नि' को प्रचंड बना रखा है!

इस गुप्त 'मानसिक अग्नि' से घबराकर तथा तंग आकर, दुनिया किसी 'शीतलता' की खोज में है, तथा —

दौड़-धूप करती है
परिश्रम करती है
विद्या ग्रहण करती है
वैज्ञानिक खोज करती है
ज्ञान घोटती है
दार्शनिकता की खोज में है
धर्म-कर्म करती है
जादू टोने करती है
देवी देवताओं को मनाती है
पाठ-पूजा करती है
'ईश्वर' से 'सौदे-बाजी' करती है
'भेंट' चढ़ाती है
'धर्म' का सहारा लेती है
'कष्ट' सहती है
त्राहि-त्राहि करती है।

परन्तु, फिर भी कहीं से 'शीतलता' नहीं मिलती, क्योंकि —

सुरति-वृत्ति बाहरमुख बिरवरी हुई है।
बिरवरी हुई वृत्ति को मायिकी ताप लगता है।
मन, 'स्थिर' नहीं है।
चित्त में शांति नहीं है।
धर्म को तअस्सुब की 'आग' लगी है।
विद्यक स्थानों में खुदगर्जी है।

सभा-सोसाइटियों में 'ईर्ष्या-द्वेष' की आग है।

दफ्तरों में 'लोभ-लहर' चल रही है।

यू एन. ओ. (U.N.O.) जैसी 'विश्व-संस्थाओं' में भी 'तनाव' है।

इस प्रकार हर तरफ, जीवन के हर क्षेत्र में, इस गुप्त अग्नि का उग्र ताप चढ़ा हुआ है तथा दुनिया 'मिथन-मोह-अग्नि-सोक-सागर' के 'गुप्त ताप' में जल-भुन रही है तथा पुकार कर रही है —

'हाय! शीतलता कहाँ ??

गुरू बाबे ने इस गुप्त 'विश्व हृदय' की पुकार का जवाब गुरबाणी द्वारा यँ दिया है —

आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ॥ (पृ. 1291)

कलि ताती ठांढा हरि नाउ ॥ (पृ. 288)

इस गुप्त अग्नि से बचने के लिए, दुनिया के प्रयत्नों को देख कर, गुरू बाबे ने गुरबाणी द्वारा दुनिया को यँ ढांढस दिया तथा आत्मिक मार्ग दर्शन प्रदान किया —

मन मेरे गहु हरि नाम का ओला ॥

तुझै न लागै ताता झोला ॥ (पृ. 179)

सीतल सांति सूख हरि सरणी जलती अग्नि निवारे ॥ (पृ. 210)

तपति न कतहि बुझै बिनु सुआमी सरणा राम ॥ (पृ. 545)

एहु जगु जलता देखि कै भजि पए हरि सरणाई राम ॥ (पृ. 571)

अग्नि सागर बूडत संसारा ॥

नानक बाह पकरि सतिगुरि निसतारा ॥ (पृ. 804)

महा तपति ते भई सांति परसत पाप नाठे ॥

अंध कूप महि गलत थे काढे दे हाथे ॥ (पृ. 813)

ताती वाउ न लगई पारब्रहम सरणाई ॥

चउगिरद हमारै राम कार दुखु लगै न भाई ॥ (पृ. 819)

गुर के चरन रिदै उरि धारे ॥

अगनि सागर ते उतरे पारे ॥ (पृ. 865)

जब छोटे बच्चे को चोट लग जाए या कुत्ते-बिल्ली पीछे पड़ जाएं तो वह माँ-माँ पुकारता है या भागकर 'माँ' के पास जाता है— क्योंकि उसे दृढ़ निश्चय होता है कि उसकी 'माँ' उसे मुसीबत से जरूर बचा लेगी तथा 'माँ' की गोद में ही उसका 'बचाव' है, जहां कोई दुख-क्लेश या मुसीबत नहीं पहुंच सकती।

पाइओ बाल बुधि सुखु रे ॥ (पृ. 214)

इस पूर्ण निश्चय या श्रद्धा भावना से, सतगुरु को पुकारना या सिमरन करना ही, सतगुरु की 'चरण-शरण' जाना है या 'भज पए सरणाई' है।

छोटे बच्चे की, सांसारिक 'माँ' की 'ओट' पर श्रद्धा-भावना — कुदरती 'भोले-भाव' ही है, सीखी-सिखलाई नहीं ।

परन्तु हमारे मन में ईश्वर के प्रति बच्चे जैसी, भोले-भाव श्रद्धा-भावना नहीं रही। इसका कारण यह है कि हम बहुत अक्लमंद तथा 'विवाद-पसंद' हो गये हैं इसलिए हमारी प्रार्थनाओं का परिणाम नहीं निकलता ।

बच्चा तो 'शारीरिक माँ' की गोद में भागकर जाता है। परन्तु गुरबाणी में जो 'भज पए सरणाई' लिखा है, उसमें कुछ भिन्नता तथा 'भेद' है, जिसे भली भाँति समझने-बूझने की आवश्यकता है।

जीव के 'अस्तित्व' के चार भिन्न-भिन्न दायरे हैं —

1. शारीरिक
2. मानसिक

3. भावनात्मक
4. आत्मिक

यह गुप्त आंतरिक 'अग्नि', हमारे मानसिक तथा भावनात्मक दायरे तक सीमित है तथा इस 'अग्नि' के दाह या ताप का प्रभाव हमारे शरीर पर भी पड़ता है। यह तीनों दायरे या विभाग, केवल त्रि-गुण मायिक मंडल की भ्रम-ग्रस्त प्रकृति तथा प्रवृत्ति है, जिसमें यह मानसिक अग्नि का उपद्रव उत्पन्न होता है। हमारी आत्मा त्रि-गुण मायिकी मंडल के प्रभाव से निर्लिप्त, निरवाण तथा स्वतंत्र है। इसलिए हमारी आत्मा इस मानसिक अग्नि की पहुंच से परे है।

आत्मिक प्रकाश मंडल में केवल ईश्वरीय —

प्रकाश है

चुप-प्रीत है

प्यार है

प्रेम-स्वैपना है

महा-रस है

आत्म-रंग है

चाव है

शब्द है

नाम है

सुख है

शांति है

शीतलता है।

दूसरे शब्दों में, मानसिक —

‘आत्म दुनीआ’

‘जगत जलंदा’

‘अगन सोक सागर’

की भट्ठी में से, अपनी सुरति-वृत्ति को मोड़-मोड़ कर, आत्म मंडल के—

शीतल

शांत

सुखदायी

विस्मादमयी

शीतल

‘खुनक नामु’

की ओर लगाना ही —

‘चरण-शरण’ जाना है

‘भजि पए हरि सरणाई’ है

‘हरि हरि चरन रिदे उरधारे है!!

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि

‘हरि नाम’ की ‘शीतलता’

शब्द-सुरति के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है ।

आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ॥

(पृ. 1291)

क्रमश :.....

